International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
Special Issue on Multidisciplinary Approaches and Applications Studies in Research and Innovation
Available Online: www.ijtsrd.com e-ISSN: 2456 – 6470

भारतीय न्यायपालिका की स्वतंत्रता और न्यायिक सक्रियता

रानी मिश्रा

शोधार्थी, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञानं विभाग, तिलका माँझी भागलपुर वि० वि०, भागलपुर

सारांश

भारतीय लोकतंत्र के स्तंभों में से एक न्यायपालिका, संविधान की रक्षा और नागरिक अधिकारों की निगरानी में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह शोध पत्र भारतीय न्यायपालिका की स्वतंत्रता की प्रकृति और उसके न्यायिक सक्रियता के स्वरूप का विश्लेषण करता है। इसमें सुप्रीम कोर्ट और उच्च न्यायालयों की ऐतिहासिक तथा समकालीन भूमिकाओं का अवलोकन किया गया है। इसके साथ ही न्यायिक सक्रियता की वैधानिक सीमाओं, लाभों तथा आलोचनाओं की विवेचना की गई है।

प्रमुख शब्द: *न्यायिक स्वतंत्रता, न्यायिक सक्रियता, भारतीय संविधान, जनहित याचिका, न्यायिक अतिक्रमण, सुप्रीम कोर्ट, संविधानिक न्यायालय*

परिचय:

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 50 के अनुसार, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच स्पष्ट पृथक्करण होना चाहिए। न्यायपालिका की स्वतंत्रता एक आवश्यक शर्त है ताकि वह निष्पक्षता और स्वायत्तता के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सके।

न्यायिक सक्रियता का अभिप्राय है— ऐसी परिस्थिति जिसमें न्यायालय नीति निर्माण या प्रशासनिक कार्यों में हस्तक्षेप करता है, विशेषतः जब विधायिका या कार्यपालिका असफल रही हो। यह विचार भारत में 1980 के दशक में पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन के माध्यम से अधिक प्रमुखता से उभरा।

भारतीय लोकतंत्र की सफलता और स्थायित्व का प्रमुख आधार उसकी स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका है। संविधान निर्माताओं ने न्यायपालिका को विधायिका और कार्यपालिका से पृथक एवं स्वतंत्र रखने की स्पष्ट व्यवस्था की ताकि वह किसी भी प्रकार के राजनीतिक दबाव या प्रभाव से मुक्त रहकर न्याय कर सके। संविधान के अनुच्छेद 50 में यह उल्लेखित है कि राज्य, न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक रखने के लिए उपाय करेगा। यह केवल एक सैद्धांतिक विचार नहीं, बल्कि भारतीय लोकतंत्र की व्यवहारिक बुनियाद है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ है – न्यायाधीश अपने कार्यों को करते समय किसी बाहरी दबाव, राजनीतिक हस्तक्षेप या अनुचित प्रभाव से मुक्त हों। इससे नागरिकों को यह विश्वास होता है कि उनके अधिकारों की रक्षा के लिए एक निष्पक्ष मंच उपलब्ध है।

वहीं न्यायिक सक्रियता एक ऐसी अवधारणा है जो विशेष परिस्थितियों में न्यायपालिका को विधायिका और कार्यपालिका की निष्क्रियता या विफलता के कारण हस्तक्षेप करने की अनुमति देती है, ताकि नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की जा सके। यह धारणा भारत में विशेष रूप से 1980 के दशक के बाद सशक्त रूप में उभरी जब सुप्रीम कोर्ट ने जनहित याचिकाओं के माध्यम से सामाजिक न्याय और सार्वजनिक नीति पर असर डालने वाले मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में न्यायिक सक्रियता का स्वरूप और प्रभाव अत्यंत व्यापक रहा है – चाहे वह पर्यावरण संरक्षण के मामले हों, महिलाओं और बच्चों के अधिकार हों, भ्रष्टाचार के विरुद्ध कार्रवाई हो या कार्यपालिका की निष्क्रियता पर प्रश्न उठाना। यह भी सत्य है कि न्यायिक सक्रियता ने कई बार संवैधानिक सीमाओं को छूने या लांघने का प्रयास किया है, जिससे न्यायिक अतिक्रमण की बहस जन्मी है।

इस शोध पत्र के माध्यम से हम यह विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार भारतीय न्यायपालिका ने समय-समय पर अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखते हुए लोकतंत्र को सशक्त करने का कार्य किया है, और किस हद तक न्यायिक सक्रियता भारत में सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनी है।

भारतीय न्यायपालिका की स्वतंत्रता:

1. **संवैधानिक प्रावधान:**
   - अनुच्छेद 124 से 147 तक सुप्रीम कोर्ट और अनुच्छेद 214 से 231 तक उच्च न्यायालयों की स्थापना और कार्यविधि निर्धारित की गई है।
   - न्यायाधीशों की नियुक्ति, कार्यकाल और वेतन सुनिश्चित किया गया है ताकि उन पर किसी प्रकार का दबाव न हो (India Const. art. 124).
2. **महत्वपूर्ण निर्णय:**
   - *S.P. Gupta v. Union of India*, AIR 1982 SC 149: इसमें न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया की पारदर्शिता की मांग की गई थी।
   - *Supreme Court Advocates-on-Record Association v. Union of India*, (1993) 4 SCC 441: इस फैसले ने 'कॉलेजियम प्रणाली' को जन्म दिया, जिससे कार्यपालिका के हस्तक्षेप पर अंकुश लगाया गया।

न्यायिक सक्रियता:

1. **परिभाषा और उत्पत्ति:**
   - न्यायिक सक्रियता का अर्थ है— न्यायालयों द्वारा नीतिगत मामलों में पहल करना। भारत में यह अवधारणा *Maneka Gandhi v. Union of India*, AIR 1978 SC 597 के निर्णय से सशक्त हुई।
2. **प्रसिद्ध उदाहरण:**
   - *Vishaka v. State of Rajasthan*, AIR 1997 SC 3011: कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के खिलाफ दिशानिर्देशों का निर्माण।
   - *MC Mehta v. Union of India*, AIR 1987 SC 965: पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में न्यायिक सक्रियता का परिचायक।
   - *Olga Tellis v. Bombay Municipal Corporation*, AIR 1986 SC 180: जीवन के अधिकार में आजीविका का अधिकार शामिल किया गया।

3. जनहित याचिका:

- 1980 के दशक में जस्टिस पी. एन. भगवती और जस्टिस वी. आर. कृष्ण अय्यर के प्रयासों से PIL की शुरुआत हुई जिससे गरीब और वंचित वर्गों को न्याय मिला।

4. न्यायिक सक्रियता बनाम न्यायिक अतिक्रमण:

- न्यायिक सक्रियता को कई बार 'न्यायिक अतिक्रमण' (Judicial Overreach) कहा जाता है जब न्यायपालिका अपनी सीमाओं से आगे जाकर विधायिका/कार्यपालिका के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है।
- *Arun Gopal v. Union of India*, AIR 2017 SC 1439 जैसे मामलों में कोर्ट ने स्पष्ट किया कि न्यायपालिका का कार्य केवल संविधान की व्याख्या करना है, नीति निर्माण नहीं।

भारतीय न्यायपालिका के संदर्भ में **स्वतंत्रता और सक्रियता** दो ऐसे स्तंभ हैं जो न केवल लोकतंत्र को सशक्त करते हैं बल्कि शासन प्रणाली में संतुलन और पारदर्शिता भी स्थापित करते हैं।

न्यायिक स्वतंत्रता की व्यावहारिक व्याख्या:

भारतीय संविधान में न्यायाधीशों की नियुक्ति, स्थानांतरण, वेतन, और उनके कार्यकाल की सुरक्षा जैसे अनेक प्रावधान इस उद्देश्य से किए गए हैं कि वे बिना किसी भय, पक्षपात या दबाव के अपने कार्य कर सकें। *Second Judges Case (1993)* और *Third Judges Case (1998)* के बाद कॉलेजियम प्रणाली की स्थापना ने कार्यपालिका के हस्तक्षेप को सीमित करने का प्रयास किया।

हालांकि, यह प्रणाली भी आलोचनाओं से अछूती नहीं रही। कॉलेजियम प्रणाली में पारदर्शिता की कमी और जवाबदेही के अभाव को लेकर कई प्रश्न उठते रहे हैं। हाल के वर्षों में न्यायाधीशों की नियुक्ति में देरी, सरकार और न्यायपालिका के बीच टकराव, और मुख्य न्यायाधीशों की सार्वजनिक आलोचनाएँ इस स्वतंत्रता की व्यवहारिक जटिलताओं को उजागर करते हैं।

न्यायिक सक्रियता की सामाजिक भूमिका:

न्यायिक सक्रियता ने भारतीय समाज में उल्लेखनीय परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सुप्रीम कोर्ट ने कई ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से न केवल प्रशासनिक विफलताओं की ओर संकेत किया बल्कि आम नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा भी सुनिश्चित की।

- *Vishaka v. State of Rajasthan* मामले में जब विधायिका द्वारा यौन उत्पीड़न के विरुद्ध कोई विशेष कानून नहीं था, तब न्यायालय ने दिशानिर्देश जारी कर कार्यस्थल पर महिला सुरक्षा को सुनिश्चित किया।
- *MC Mehta* मामलों में पर्यावरण सुरक्षा के लिए सुप्रीम कोर्ट ने अनेक निर्देश जारी किए जो आज भी पर्यावरण कानून के मूल आधार बने हुए हैं।

PIL के माध्यम से सामाजिक कार्यकर्ताओं और जागरूक नागरिकों को न्यायालय तक पहुँचने का अवसर मिला, जिससे उन मुद्दों पर भी सुनवाई हुई जो पहले उपेक्षित रहते थे – जैसे जेलों में कैदियों के अधिकार, बाल श्रम, स्वास्थ्य सेवा की दुर्दशा आदि।

न्यायिक सक्रियता बनाम अतिक्रमण:

न्यायिक सक्रियता का अति विस्तार न्यायिक अतिक्रमण में परिवर्तित हो सकता है। जब न्यायालय नीति निर्धारण करने लगता है या संसद के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप करता है, तो संवैधानिक संतुलन बिगड़ने का खतरा उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए *National Anthem Case (Shyam Narayan Chouksey v. Union of India, 2016)* में जब सुप्रीम कोर्ट ने सिनेमाघरों में अनिवार्य रूप से राष्ट्रगान चलाने का आदेश दिया, तब इसकी आलोचना हुई कि न्यायालय संस्कृति और नीति पर जबरन नियंत्रण कर रहा है।

न्यायिक सक्रियता के समर्थक इसे 'न्याय की अंतिम उम्मीद' के रूप में देखते हैं, जबकि आलोचक इसे लोकतांत्रिक व्यवस्था की सीमाओं का उल्लंघन मानते हैं। इसी कारण यह आवश्यक है कि न्यायपालिका अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय **संविधान की भावना, लोकतांत्रिक संतुलन,** और **जनहित** को ध्यान में रखते हुए सीमाओं का आदर करे।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य:

आज भारत में जब विधायिका और कार्यपालिका पर सार्वजनिक विश्वास में कमी आई है, तब न्यायपालिका का दायित्व और बढ़ गया है। परंतु इस दायित्व का निर्वहन संविधान के दायरे में रहकर ही करना होगा। साथ ही न्यायिक प्रणाली में देरी, लंबित मामले, और न्याय तक पहुँच की सीमाएं ऐसे मुद्दे हैं जिन्हें सुलझाना अत्यावश्यक है।

चुनौतियाँ:

1. न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया में पारदर्शिता की कमी
2. जवाबदेही का अभाव
3. न्यायिक देरी एवं लंबित मामले (लगभग 5 करोड़ से अधिक मामले लंबित हैं – *National Judicial Data Grid, 2024*)

निष्कर्ष

भारतीय न्यायपालिका की स्वतंत्रता लोकतंत्र के लिए अपरिहार्य है, और न्यायिक सक्रियता ने कई बार ऐसे मामलों में राहत दी है जहाँ अन्य संस्थाएं विफल रही थीं। हालांकि, न्यायपालिका को अपनी संवैधानिक सीमाओं का सम्मान करना चाहिए। न्यायिक सक्रियता तब तक उपयोगी है जब तक वह न्याय देने की अंतिम भूमिका में हो, न कि नीति निर्माता बनने में।

संदर्भ सूची

[1] बसु, डी. डी. (2023)। भारत के संविधान का परिचय (24वां संस्करण)। लेक्सिसनेक्सिस।

[2] जैन, एम. पी. (2021)। भारतीय संवैधानिक कानून (9वां संस्करण)। लेक्सिसनेक्सिस।

[3] भारत का सर्वोच्च न्यायालय। एस.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ, एआईआर 1982 एससी 149।

[4] भारत का सर्वोच्च न्यायालय। सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-ऑन-रिकॉर्ड एसोसिएशन बनाम भारत संघ, (1993) 4 एससीसी 441।

[5] भारत का सर्वोच्च न्यायालय। मेनका गांधी बनाम भारत संघ, एआईआर 1978 एससी 597।

[6] भारत का सर्वोच्च न्यायालय। विशाखा बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर 1997 एससी 3011।

[7] भारत का सर्वोच्च न्यायालय। एमसी मेहता बनाम भारत संघ, एआईआर 1987 एससी 965।

[8] भारत का सर्वोच्च न्यायालय। ओल्गा टेलिस बनाम बीएमसी, एआईआर 1986 एससी 180।

[9] राष्ट्रीय न्यायिक डेटा ग्रिड (2024)। https://njdg.ecourts.gov.in